लोक संस्कृति के आइने में लोक साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ,उ.प्र–226017

शोध सारांश

नागर के विपर्यय में लोकशब्द को समझा जा सकता है किंतु प्राचीन काल मे यह शब्द व्यापक जन समाज के लिए आता था । मात्र ग्रामीण जन जीवन के लिए नही। आचार्य अभिनव गुप्त ने अपने समय में कहा था कि लोकोनाम जनपद वासी जन " अर्थात जनपद में रहने वाला जन ही लोक है, परन्तु आज लोकशब्द को मात्र ग्रामीण जनजीवन तक सीमित कर दिया गया है । अभिनव गुप्त के मतानुसार लोकशब्द से वह संपूर्ण समाज (नगर और ग्राम्य) संबोधित होता है जो जीवन के अनगढपन को बडे ही सहज ढंग से स्वीकार करता है और जीता है । इस अनगढपन में समाज का सामूहिक अनुभव और विवेक होता है जो अपनी स्वीकृति के लिए किसी शास्त्र के वजाय जीवन के कर्मरत अनुभव और परिस्थितिपरक राग अनुराग से उत्पन्न विवेक पर निर्भर करता है । लोक साहित्य साहित्य को तीन रूपों में व्यक्त किया जाता हैं– प्रथम के तहत–कथा, दूसरा–गीत, तीसरा–कहावतें आदि। लोककथाओं की विभेदता भी तीन रूपों में मानी जाती है– धर्मगाथा,लोकगाथा तथा लोक कहानी। धर्मगाथा (माईथालाजी) पृथक अध्ययन का विषय है। शेष कथा के दो भाग रह जाते हैं– लोकगाथा तथा लोक कहानी। डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय ने इन दोनों का पृथक–पृथक अस्तित्व स्वीकार करते हुए लोक साहित्य को चार रूपों में बाँटा है एक–गीत, दूसरा–लोकगाथा, तीसरा–लोककथा तथा चौथा–प्रकीर्ण साहित्य जिसमें अवशिष्ट समस्त लोकाभिव्यक्ति का समावेश कर लिया गया है।

Key Words: *लोक संस्कृति,लोक साहित्य , सांस्कृतिक विरासत , कला, ग्रामीण जनजीवन ,प्रासंगिकता।*

सैकड़ों वर्षों की गुलामी के कारण भारतीय चेतना भावना शून्य एवं कुंठित हो गयी थी। ऐसे में अपनी संस्कृति के विभिन्न पहलुओं से उसने अपना मुख मोड़ लिया था। अंग्रेजियत के प्रभाव में वह अपने ही इतिहास, साहित्य, कला, संस्कृति को विस्मृत करते जा रहे थे। परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ ज्यों–ज्यों स्वतंत्रता की चाह बलवती होती गई वह अपनी धरोहर को भी पहचानने लगा। साहित्य–कला–संस्कृति से बरबस ही प्रेम करने लगा। जिन हीरों को वह काँच का टुकड़ा समझते था, उनकी पहचान होने लगी थी। अपने प्राचीन साहित्य का अनुसंधान करते समय उसका ध्यान लोक साहित्य की ओर भी गया जिसके अन्तर्गत लोक वार्ता, लोक गाथा, लोक संस्कृति, लोक नाट्य, लोक नृत्य, लोक संगीत, लोक विधायें सम्मिलित हैं। पीढ़ियों से दादी–नानी की कंठों में सहेजी इस लोक संस्कृति की कला को उसने समझना–परखना शुरू किया। चूँकि उसकी संस्कृति की आत्मा लोक में ही बसती है। इसलिए वास्तव में देखा जाये तो आज लोक–साहित्य के आधार पर भारतीय संस्कृति का मूल्यांकन आवश्यक हो गया है क्योंकि इसके बिना हमारा सम्पूर्ण सांस्कृतिक अध्ययन अपूर्ण और निर्जीव सा है।

किसी भी देश की लोक संस्कृति उस देश की इतिहास की दर्पण होती है। भारत की लोक संस्कृति से भारत के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। भारत की सांस्कृतिक विरासत विस्तृत विशाल और समृद्ध है। इसे किसी भी प्रशासनिक सीमाओं में बाँध पाना संभव नहीं है। इसे क्षेत्रीय आधार पर विभाजित कर अध्ययन किया जा सकता है। शिष्ट, सभ्यता और संस्कृति के लोगों ने लोक कला, साहित्य–संस्कृति को सदैव ही असभ्य अथवा अर्द्धसभ्य ही समझा। लेकिन युग परिवर्तन व सोचने की शक्ति की व्यापकता ने आज इस सोच को भी परिवर्तित किया है और हमारे देश में लोक साहित्य के अध्ययन और शोध कार्य में पिछले कुछ दशकों में तेजी आई है। इसके साथ ही लोक साहित्य के संग्रह, संरक्षण का कार्य जारी है।

'लोक' शब्द का प्रयोग प्राचीनकाल से ही होता आ रहा है। 'लोक' शब्द का मूल अर्थ है–देखने वाला। अतः लोक शब्द का प्रयोग पूरे जनसमुदाय के लिये होता है। जो इस कार्य को करता है लोक कहलाता है। ऋग्वेद् में लोक के लिये 'जन' शब्द का प्रयोग हुआ है, जो जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में है। इसमें कोई दो राय नहीं कि लोक संस्कृति की झलक लोक–साहित्य में मिलती है, जो गंगा और यमुना की पवित्र एवं अविरल धाराओं की भांति ही अपने स्वाभाविक रूप में जन–वाणी द्वारा मुखरित होती आ रही है। क्योंकि इसमें सन्निहित हमारे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक इत्यादि जीवन के चित्र वास्तविक संस्कृति का दिग्दर्शन कराते हैं, जो सर्वथा अकृत्रिम हैं।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने 'लोक' शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ''आधुनिक सभ्यता से दूर, अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली तथा कथित अशिक्षित और असंस्कृत जनता को लोक कहते हैं जिनका आचार–विचार एवं जीवन परम्परा युक्त नियमों से नियंत्रित होता है तथा इन्हीं लोगों के साहित्य को लोक–साहित्य कहा जाता है। अनेक दृष्टियों से लोक–साहित्य वैयक्तिक और सामुदायिक जीवन के बहुत करीब होता है। बड़े से बड़ा लेखक जिन विषयों को केन्द्रित कर अपना लेखन करता है, वह अक्सर दैनिक जीवन के ऊपर के स्तर के होते हैं; परन्तु लोक साहित्य आजीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक की घटनाओं के चित्र खींचता है। जिन मुहावरों और लोकोक्तियों से वह साहित्य का सृजन करता है। वह बड़ी ही मर्मस्पर्शी और सजीव होती है। यदि किसी राष्ट्र से लेकर छोटे समुदाय तक के जीवन का आन्तरिक एवं बाह्य ज्ञान हासिल करना है तो उसके लोक–साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार लोक–साहित्य में सहज मानव अनुभूतियों का साक्षात्कार होता है और ऐसे अनेक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक तत्व उनमें प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहते हैं जो तथाकथित इतिहास में स्थान नहीं पा सके हैं, लेकिन उनमें जन–चित्त को आन्दोलित और मथित करने की शक्ति विद्यमान रहती है।

लोक–साहित्य के अन्तर्गत अन्य विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन–मनन–चिन्तन किया जाता है जिसमें लोक गीत, लोक गाथा, लोक कथा, लोक नाट्य, लोक सुभाषित, लोक कला, लोक संगीत, लोक संस्कृति, लोकाचार इत्यादि विशेष महत्व रखते हैं। क्योंकि लोक साहित्य में निष्कपट हृदय की जो भावनाएँ मुखरित हैं, उनमें जो सजीवता और हृदय–स्पर्शी मार्मिकता, सच्चाई, अनुभूति की गहराई एवं सामयिकता का यथार्थ है, शायद वह अभिजात–वर्गीय कवियों तथा लेखकों की अलंकृत वाणी में देखने को नहीं मिलती है ? हर देश और हर जाति की भाषा का अपना एक लोक साहित्य होता है जो मौखिक होता है तथा जनमानस की सहज अभिव्यक्ति होता है। लोक साहित्य 'जन वाणी' है 'लोक वाणी' है। यह किसी व्यक्ति विशेष का नहीं है वरन् समूह की वाणी है।

लोक साहित्य, भाषा पर कार्य करने वाले विदेशी विद्वानों में कर्नल टाड, डाल्टन, मिस फ्रेयर, डैमण्ड, आर. सी. टेम्पल, मिस्टर डब्लू क्रुक, कैम्बेल,नीलोज, टॉनी, पेंजर का नाम महत्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त श्री विनय कुमार सरकार, शरत् चन्द्र राय, ग्रियर्सन, रामास्वामी राजू, श्री आर सुब्रहमन्यम इत्यादि शोधकों और विद्वानों ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है।देखा जाये तो भारत में लोक साहित्य के सन्दर्भ में जो चेतना जागृत हुयी है वह अंग्रेजी विद्वानों द्वारा किये गये कार्यों व उनकी कृतियों को देख– पढ़ कर ही है। ''लीजेन्ड ऑफ पंजाब के लेखक श्री आर. सी. टेम्पल महोदय ने कहा है कि – सन् 1884 ई0 तक विदेशों में इस सम्बन्ध में जितना काम हुआ था, उतने काम का एक अंश भी हमारे देश में तब तक नहीं हो पाया था।''

लोक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में मैं विशेष रूप से भोजपुरी साहित्य, कला, संस्कृति की बात को आगे बढ़ाना चाहूँगा। भोजपुरी लोक–साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है कि यह साधारण लोगों के सुख–दुख, आँसू और हँसी को चित्रित करने में सक्षम है। वास्तव में देखा जाये तो ये बार–बार घटित होने वाले विषय आम व्यक्ति के सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक जीवन को अंकित करते हैं। यह एक अत्यन्त प्राचीन तथा अविच्छिन्न परम्परा है। भारतीय लोकवार्ता से सम्बन्धित कार्य करने वाले विद्वानों में सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम है, जार्ज ग्रियर्सन का जो प्रसिद्ध भाषाविद् थे। सन् 1886 ई0 में ग्रियर्सन का ग्रन्थ ''सम भोजपुरी फोक सॉग्स'' प्रकाशित हुआ जिसमें बिहार के भोजपुरी जनपद के बिरहा, जतसार तथा सोहर नामक गीतों का संकलन किया गया था। इसके पश्चात् अनेक लेख लिखे गये। एच. दामंत, विलियम क्रुक, आर. एम. कांकरनैस, डब्ल्यू. टी. डेल्स इत्यादि अंग्रेजी विद्वानों ने भोजपुरी लोक साहित्य, लोकगीतों पर कार्य किया।

भारतीय विद्वानों द्वारा भी लोक साहित्य पर कार्य आरम्भ हुआ। हिन्दी में लोक साहित्य पर पुस्तक लिखने का कार्य सर्वप्रथम मन्नन द्विवेदी ने किया। बाद में लाला संतराम, पं. रामनरेश त्रिपाठी, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, श्री नरोत्तम स्वामी, ठाकुर राम सिंह, श्री दुर्गाप्रसाद सिंह, श्रीमती रामकिशोरी श्रीवास्तव, श्याम चरण, श्री मारकण्डेय, श्री कृष्णदेव उपाध्याय, श्री कृष्णदास, डॉ. उदय नारायण तिवारी, सत्यव्रत अवस्थी इत्यादि लोक संस्कृति, लोकगीतों के प्रेमियों ने जो सत्प्रयास किये वो अवर्णनीय हैं। इनके अतिरिक्त साहित्यिक संस्थाओं ने भी इसे आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी एकेडमी तथा 'भोजपुरी', 'लोक वार्ता,''लोकवाणी' तथा 'लोक साहित्य' इत्यादि संस्थाओं व पत्रिकाओं ने जो कार्य इस दिशा में किया वह सराहनीय है। भोजपुरी लोक साहित्य के अवलोकन करने में हमें आश्चर्य होता है कि कैसे शताब्दियों के हस्तक्षेप के बावजूद कुछ परम्पराएँ वर्तमान में भी अपने मौलिक रूप में आज भी जीवंत हैं। मॉरीशस, त्रिनिनाद, टुवैगो तथा विश्व के अन्य देशों में भारत के उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग और बिहार में प्रचलित परम्पराओं से उनकी अद्भुत समानता परिलक्षित होती है।

विशेष रूप से लोक साहित्य के क्षेत्र में व्यवस्थित कार्य करने का श्रेय पं. रामनरेश त्रिपाठी को जाता है। जिनका लोक गीत संग्रह 'ग्राम गीत' सन् 1929 ई0 में प्रकाशित हुआ। देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोक साहित्य सम्बन्धी लगभग एक दर्जन से अधिक पुस्तकों की रचना की जिसमें कुछ पुस्तकें लोकप्रिय हैं – बेला फूले आधी रात, धरती गाती है, बाजत आवे ढ़ोल, धीरे बहो गंगा इत्यादि। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय की 'भोजपुरी लोक गीत' तथा 'भोजपुरी लोक संस्कृति' इत्यादि संग्रह के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

- कुमारडॉ0विजय,भोजपुरी भाषा, साहित्य और संस्कृति, प्रकाशन मंदिर, वाराणसी,संस्करण–संस्करण–2004–05
- उपाध्याय, डॉ0 कृष्णदेव भोजपुरी लोक साहित्य,विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी, संस्करण–2002
- राय–जयप्रकाश,सिंह डॉ0 योगेन्द्र प्रताप,उत्तर मध्य क्षेत्र की संस्कृति, प्रकाशन विभाग,नई दिल्ली, भारत सरकार, दूसरा संस्करण–1999
- वर्मा डॉ0 धीरेन्द्र–प्रधान सम्पादक–हिन्दी साहित्य कोश (भाग–1) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,2006
- पाण्डेय डॉ0 लक्ष्मी कान्त ,भाषा विज्ञान तथा हिन्दी भाषा का विकास– ग्रन्थम –रामबाग, कानपुर,2012
- उपाध्याय डॉ0 कृष्णदेव,लोक साहित्य की भूमिका–साहित्य भवन, इलाहाबाद, संस्करण – 2002
- उपाध्याय डॉ0 कृष्णदेव,भोजपुरी और उसका साहित्य– राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2011
- उपाध्याय डॉ0 कृष्णदेव,भोजपुरी ग्रामगीत भाग–1– हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,1994
- उपाध्याय डॉ0 कृष्णदेव,भोजपुरी ग्रामगीत भाग–2– हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,1994
- 'राकेश' रामएकबाल सिंह, मैथिली लोकगीत– हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,2002
- झा डॉ0 गंगानाथ –भोजपुरी गीतों में राष्ट्रीय भावना, अजन्ता प्रेस, पटना,बिहार, प्र0सं02001
- त्रिपाठी–पथिक रामनरेश,पंकज प्रकाशन, पटना, पटना,बिहार,प्र0सं0,2001
- हिन्दुस्तान एकेडमी,हिन्दी भाषा का इतिहास, कमला नेहरू रोड,प्रयाग, संस्करण, 1973